तुलसी स्मृति ग्रंथ

तुलसी स्मृति ग्रंथ

प्रथम संस्करण-2014
ISBN 978-81-930198-0-1
₹ 5,100/-

प्रकाशक :
आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह समिति
अणुव्रत भवन, 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली-110 002
फोन : +91-11-23236728, 23212123
ई-मेलः info@jstmahasabha.org

J.V.B. INSTITUTE
Central Library
LADNUN (RAJ.)

Jain Vishva Bharati Institute
Accession No.... 5053

प्रायोजक :
श्री रमेशकुमार धाकड़
मुम्बई, महाराष्ट्र

AC.
294.4551
TUL-C
V.1

मुद्रक :
प्रगति ऑफसेट प्रा.लि.
हैदराबाद-500 004
तेलंगाना

परिकल्पना :
आवरण एवं पृष्ठ सज्जाः संजीव बोथरा, रचिता राक्यान
निरूपण कार्यः क्रेयोन्स, जयपुर
छायाचित्रकारः रघु राय, नई दिल्ली
छायाचित्र सौजन्यः धरम सज्जन ट्रस्ट, जयपुर
हस्तलेखनः अमित खरसानी, अहमदाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित :
तुलसी स्मृति ग्रंथ के दोनों भाग में प्रकाशित संदेश, विचार, लेख, आलेख, संस्मरण, टाईम लाईन आदि जिसमें कैलिग्राफी द्वारा लिखित अक्षर, शब्द एवं डिज़ाइन आदि को, हिस्से या पूर्ण रूप में किसी भी माध्यम, फोटो कॉपी, फोटोग्राफ, इलैक्ट्रोनिक, मैकेनिकल, रिकॉर्डिंग उपकरण इत्यादि द्वारा पुनः पत्र, पुस्तक, अन्य साहित्य एवं किसी भी कार्य में उपयोग, प्रकाशित, प्रसारित कर, इनका इस्तेमाल/उपयोग/प्रयोग इत्यादि प्रधान संपादक/प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है। प्रकाशित सभी छायाचित्र सिर्फ तुलसी स्मृति ग्रंथ में प्रकाशन हेतु संस्था विशेष और फोटोग्राफर विशेष द्वारा उपलब्ध कराए गए हैं। इन सभी छायाचित्रों के सर्वाधिकार (कॉपीराईट) संस्था एवं फोटोग्राफर के पास सुरक्षित है।

नैतिकता की गूंज : झोंपड़ी से राष्ट्रपति भवन तक	डॉ. ऊषा गोयल	630
अणुव्रत आंदोलन में पत्रकारों की भूमिका	जैन लूणकरण छाजेड़	638
अहिंसक विश्व-व्यवस्था में अणुव्रत की भूमिका	प्रो. रामजी सिंह	646

दर्शन के परिप्रेक्ष्य में 651

अनेकांत और स्याद्वाद	आचार्य विद्यानंद मुनि	653
युगीन समस्याएं और अनेकांत	प्रो. के. एल. कमल	660
स्याद्वाद : भेद में अभेद का सर्जक	डॉ. समणी चैतन्यप्रज्ञा	662
अनेकांत और सह-अस्तित्व	डॉ. अनेकांत कुमार जैन	668
आचार्य तुलसी का अनेकांत दर्शन	डॉ. अशोक कुमार जैन	673
भारतीय संस्कृति पर जैन-धर्म का प्रभाव	आचार्य डॉ. शिवमुनि	679
आचार्य तुलसी का भारतीय संस्कृति को योगदान	महामहोपाध्याय दयानंद भार्गव	685
भारतीय दर्शनों में जैनदर्शन का वैशिष्ट्य	प्रो. प्रेम सुमन जैन	694
धर्म और दर्शन	डॉ. साध्वी मंगलप्रज्ञा	702
नियति बनाम पुरुषार्थ	प्रो. सागरमल जैन	706
विश्व-व्यवस्था और जैनदृष्टि	डॉ. साध्वी योगक्षेमप्रभा	718
लोक-अलोक के विभाजक तत्त्व	डॉ. साध्वी अक्षयप्रभा	725
जैनधर्म दृष्टि में मानव संस्कृति का उद्भव और विकास	डॉ. साध्वी चैतन्यप्रभा	728
जैन संस्कृति के मौलिक तत्त्व	डॉ. साध्वी ऋद्धियशा	733
जैन ज्ञान-मीमांसा	डॉ. साध्वी सुधाप्रभा	739
आचार्य तुलसी के साहित्य में कर्मवाद की अवधारणा	डॉ. समणी रोहिणी प्रज्ञा	749
पंचसमवाय- सम्यग्ज्ञान का आधार	डॉ. समणी आगमप्रज्ञा	754
हुसर्ल की फेनॉमेनॉलॉजी में जैन नयवाद की झलक	डॉ. समणी रोहितप्रज्ञा	758
जैन साहित्य में गणित के सिद्धांत	मुनि अभिजीतकुमार	762
दक्षिण भारत की संस्कृति को जैनधर्म का योगदान	समणी चारित्रप्रज्ञा	766
वर्तमान अर्थचिंतन-अर्थव्यवस्था एवं सापेक्ष अर्थशास्त्र	डॉ. बजरंग लाल गुप्ता	772
जैनधर्म और आध्यात्मदृष्टि	डॉ. श्रीमती कल्पना जैन	776
आगम संपादन : एक पर्यवेक्षण	मुनि योगेशकुमार	781
बीसवीं सदी के आगम-वाचनाकार आचार्य श्री तुलसी	प्रो. फूलचंद जैन प्रेमी	789

उनके समास को, समन्वय को यथार्थ कहा है। किसी एक को ही सृष्टि या जीवन का संचालक मानने वाला वस्तुस्थिति का सही मूल्यांकन नहीं कर सकता। जैनदर्शन के अनुसार पांचों का समन्वित ज्ञान ही सत्यता का बोधक है। प्रश्न हो सकता है– उस युग में अर्थात भगवान महावीर के समय तीन सौ तिरेसठ मत थे फिर पंच समवाय के अंतर्गत इन पांच को ही क्यों लिया गया, संभव है कि इसका आधार जैनआगम ही रहा हो। जैनआगमों की ओर दृष्टिपात करने पर यह अनुभव होता है कि आगम में कुछ ऐसे भी सिद्धांत हैं, जिन्हें पढ़कर जो व्यक्ति आगम की सापेक्ष दृष्टि को समझने में सक्षम नहीं है वह अपने दृष्टिकोण को एकांतवादी बना सकता है।

जैन परंपरा के अनुसार काललब्धि के परिपाक से अनेक कार्य संपन्न होते हैं , यथा–

- जीव का अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में आना।
- कर्म सिद्धांत में अबाधाकाल की अवधारणा। अबाधाकाल अर्थात एक निश्चित समय से पूर्व कर्म का उदय में नहीं आना, जैसा कि उत्तराध्ययन चूर्णि में बताया गया ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, अंतराय कर्म का अबाधाकाल तीन हजार वर्ष, दर्शनमोह का सात हजार वर्ष, चारित्रमोह का चार हजार वर्ष, नाम और गौत्र का दो हजार वर्ष का है।
- कालादि लब्धियों के निमित्त पाकर जीव का तीन करण रूप परिणाम को प्राप्त होना आदि ऐसे अनेक तथ्य हैं जो काल की कारणता पर विशेष बल देते हैं। काल लब्धि से होने वाले इन सिद्धांतों को देखते हुए संभव है– किसी का दृष्टिकोण कालवादी बन जाए।

जहां तक स्वभाव की बात है– जैनदर्शन में प्रत्येक द्रव्य का अपना–अपना स्वभाव बतलाया गया है। धर्मास्तिकाय का गति, अधर्मास्तिकाय का स्थिति, आकाशस्तिकाय का अवगाहन, जीव का चेतनता आदि। जीव अजीव के अनादि परिणामिक भाव (स्वभाव) की चर्चा भी जैन आगमों में देखने को मिलती है। आठ कर्मों के भी अपने–अपने स्वभाव निर्दिष्ट हैं। संभव है, आगम में उपस्थित ये चर्चाएं स्वभाववाद के दृष्टिकोण का निर्माण करें।

वास्तव में जैन दर्शन नियतिवाद का निरसन करता है फिर भी कुछ ऐसे प्रसंग हैं, ऐसी मान्यताएं हैं, जो नियति को स्वीकार भी करती हैं। भगवान महावीर और गोशालक का प्रसंग इसका स्पष्ट उदाहरण है। एक बार गोशालक भगवान के साथ कूर्मग्राम की ओर प्रस्थित हुआ। मार्ग में एक तिलस्तंब को देखकर गोशालक ने पूछा– ''भगवन। यह तिलस्तंब निष्पन्न होगा या नहीं?'' भगवान बोले– ''यह निष्पन्न होगा। इस तिलस्तंब में सात तिल के जीव आकर तिल की फली में उत्पन्न होंगे।'' गोशालक को इस बात पर श्रद्धा नहीं हुई। उसने तिलस्तंब के पास जाकर उसको जड़ सहित उखाड़ कर एक ओर फेंक दिया। किंतु वर्षा के कारण वह तिलस्तंब कालांतर में फिर अंकुरित हो गया। गोशालक यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया। उस दिन के बाद वह 'पउट्टपरिहार' के आधार पर नियतिवाद का पूर्ण समर्थक बन गया। जैनधर्म में कालचक्र का एक नियत क्रम स्वीकार किया गया है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में

सुषमा–सुषमा आदि आरों का एक निश्चित समय एवं क्रम माना गया है। एक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में होने वाले तीर्थंकर की संख्या भी निश्चित है। तीर्थंकरों आदि तिरेसठ श्लाकापुरुषों की माताओं द्वारा देखे जाने वाले स्वप्नों की संख्या भी नियत है। प्रतिवासुदेव के द्वारा वासुदेव की मृत्यु एवं उसका नरक में जाना भी जैनदर्शन के अनुसार नियत है।

पंच समवाय में चतुर्थ समवाय है– कर्म। कर्म सिद्धांत जैनधर्म–दर्शन का प्रमुख सिद्धांत है। इस मान्यता के कुछ आधार सूत्र हैं। **कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि।** अर्थात फल भोगे बिना कृत कर्मों से छुटकारा नहीं हो सकता है। इसी प्रकार सूत्रकृतांग सूत्र में कहा गया है– **'जं जारिसं पुव्वमकासि कम्मं, तहेव आगच्छति संपराए।'** अर्थात अतीत में जैसा भी कोई कर्म किया गया है, भविष्य में वह उसी रूप में उपस्थित होता है। व्यक्ति जैसे कर्मों को करता है, वैसे ही फल भोगता है। व्यक्ति को जो कुछ मिला है या मिलता है, वह उसे उसके कर्मों के फल के रूप में ही मिलता है। इन अवधारणाओं को सुनने से बहुत लोगों की यह भ्रांत धारणा बन सकती है कि जैनदर्शन सर्वथा कर्मवादी दर्शन है।

पांचवां तत्त्व है– पुरुषवाद या पुरुषार्थवाद। वस्तुतः कर्म और पुरुषार्थ– दो नहीं, एक ही हैं। इसमें अंतर इतना–सा है कि वर्तमान का पुरुषार्थ 'पुरुषार्थ' कहलाता है और अतीत का पुरुषार्थ 'कर्म' कहलाता है। **'अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य** अर्थात आत्मा ही सुख और दुःख की कर्ता है वही कर्म को काटने वाली है। कर्म करने वाली हमारी आत्मा ही है और कर्म काटने वाली भी हमारी आत्मा ही है। आत्मा पुरुषार्थ करने में स्वतंत्र है। 'सब कुछ कर्म ही करता है'– जैन दर्शन के अनुसार यह अत्यंत भ्रांत धारणा है। सच्चाई तो यह है कि पुरुषार्थ के द्वारा व्यक्ति अपनी जन्म–कुंडली को भी बदल सकता है, भाग्य को भी बदल सकता है। अपने कर्मों को भी बदल सकता है। काल, स्वभाव, नियति और कर्म– ये सब व्यक्ति को प्रभावित करते हैं किंतु ये चारों उत्तरदायी नहीं है। उत्तरदायी है व्यक्ति का अपना पुरुषार्थ, अपना कर्तृत्व। ध्यान देने योग्य बात यह है– कर्तृत्व जीव का स्वतंत्र है। कर्तृत्व करने में जीव का पुरुषार्थ ही अपेक्षित है। भगवान महावीर ने कहा– **स्वयं सत्य खोजो।** दूसरा हमें मार्ग दिखाने में सहायता दे सकता है किंतु चलना व्यक्ति को स्वयं ही होगा। जैनदर्शन में तप, संयम, निर्जरा, मोक्ष आदि तथ्य पुरुषार्थ को ही दर्शाते हैं। समस्त साधना पुरुषार्थ पर ही टिकी हुई है। भगवान महावीर ने साढ़े बारह वर्ष तक तपस्या करके केवलज्ञान की प्राप्ति की। यह उनके पुरुषार्थ का ही परिणाम है। अनाथी मुनि, अतिमुक्तक कुमार, थावच्चापुत्र, गजसुकुमार आदि अनेक ऐसे जीव हुए, जिन्होंने अपने पुरुषार्थ के बल पर अल्प–वय एवं अल्प समय में ही अपनी मंजिल को प्राप्त कर लिया। कर्म सिद्धांत में उद्वर्तना, अपवर्तना, संक्रमण आदि भी पुरुषार्थवाद के महत्व को प्रतिपादित करते हैं।

ये पांचों ही वाद एक–दूसरे की अपेक्षा करके अपनी ही अहमन्यता प्रकट करते हैं। अपने से इतर का निराकरण करते हैं, तब वे मिथ्यावाद बन जाते हैं। स्वतंत्र रूप से परस्पर एक–दूसरे से निरपेक्ष रहकर वे किसी भी कार्य का संपादन नहीं कर सकते। इनकी पारस्परिक सापेक्षता ही इनको सम्यग्वाद के

रूप में परिणत करती है।

इस प्रकार ये पांचों तत्त्व– काल, स्वभाव , नियति, पुराकृत (कर्म) और पुरुषार्थ सब सापेक्ष हैं। सर्वशक्तिमान एक भी नहीं है। सबकी शक्तियां सीमित हैं, सापेक्ष हैं। किसी एक को ही सर्वशक्तिमान मानना एकांतवाद को स्वीकार करना होगा। इससे व्यक्ति भ्रांत या मिथ्या धारणाओं को विकसित कर वस्तुस्थिति का सम्यक ज्ञान नहीं कर पाएगा। सच्चाई यह है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के आधार पर किसी एक की प्रमुखता बन जाती है और बाकी चीजें गौण हो जाती हैं। इस प्रकार सापेक्षता के आधार पर ही हम संपूर्ण स्थिति का सम्यक ज्ञान कर सकते हैं।

तुलसी स्मृति ग्रंथ

संपादक मंडल

श्री गोपाल दास 'नीरज'
श्री रघु राय
श्री बालकवि बैरागी
मुनि श्री धर्मरुचि
श्री संजीव श्रीवास्तव
श्री नरेन्द्र कोहली
मुनि श्री जंबूकुमार

प्रधान संपादक

श्री अजय चौपड़ा

सह–संपादक

श्री अजीत कुमार जैन

आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह 2013 - 2014

Scanned with CamScanner